अध्याय १

भारतीय संविधान का निर्माण
(Making of the Indian Constitution)

पहली दिसम्बर १९४६ को, सोमवार का दिन था। सुबह ग्यारह बजे, नई दिल्ली के शानदार 'कान्स्टीट्यूशन हॉल' में भारत की संविधान-सभा का पहला अधिवेशन आरम्भ हुआ। संविधान सभा का उद्देश्य था, भारत जो कि शीघ्र ही स्वतंत्र होने वाला है—के लिए एक उपयुक्त संविधान बनाना।

श्री सच्चिदानन्द सिन्हा अस्थाई अध्यक्ष चुने गए। उन्होंने एक गरिमामय भाषण दिया और इकबाल के शब्दों को दोहराते हुए कहा—

"कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
अब तक मगर है बाकी नामो निशां हमारा।"

उनका कहना था, जो संविधान बनाया जाए, वह भारत की इस शानदार 'हस्ती' के अनुरूप हो।

डॉ० राधाकृष्णन् ने, जो कि एक अत्यन्त ओजस्वी वक्ता थे, सदन के प्रथम वक्ता के रूप में तालियों की गड़गड़ाहट के बीच कहा—"संविधान किसी देश का मौलिक कानून होता है। इसमें जनता के स्वप्न और भावनाएँ, आदर्श और आकांक्षाएँ सम्मिलित और अभिव्यक्त होती हैं।"[1] इन्हीं आदर्शों और उद्देश्यों के अनुरूप संविधान सभा भारत के लिए एक नया संविधान बनाने में जुट गई।

संविधान सभा का विचार

संविधान सभा द्वारा किसी देश के लिए संविधान बनाने का यह कोई पहला अवसर नहीं था। संविधान सभा का विचार संसार की महान् क्रांतियों की देन है। १७ वीं और १८ वीं शताब्दी की प्रजातांत्रिक क्रांतियों ने इस विचार को जन्म

---

1. DR. RADHAKRISHNAN—"A constitution is the fundamental law of the nation. It should embody and express the dreams and passions, the ideals and aspirations of the people."

Scanned with CamScanner

दिया कि शासन के मौलिक कानूनों का निर्माण नागरिकों की एक विशिष्ट प्रतिनिधि सभा द्वारा होना चाहिए। यद्यपि सैद्धांतिक रूप से इसका प्रतिपादन सर्वप्रथम समतावादियों और विशेष रूप से ब्रिटिश विचारक हेनरी मेन ने किया था, किन्तु व्यवहारिक रूप से सबसे पहले अमरीका ने अपना संविधान, संविधान सभा द्वारा बनाया था। अमरीका का अनुसरण किया था फ्रांस ने।

भारत में संविधान सभा का विचार

ऐसा नहीं है कि जब स्वतंत्रता भारत का द्वार खटखटाने लगी, उसी समय भारत की जनता को—संविधान सभा—का ध्यान आया हो। बल्कि संविधान सभा का विचार तो—आजादी की माँग और स्वराज्य के लिए आंदोलन के साथ ही साथ विकसित होता गया। १९०६ में कांग्रेस के अधिवेशन में अस्पष्ट शब्दों में ही सही, परन्तु यह माँग की गई थी कि भारत के शासन का स्वरूप निर्धारित करने का अधिकार भारतीयों को ही होना चाहिए।

भारतीय राजनीति में गांधीजी के पदार्पण के पश्चात् संविधान सभा का विचार एकदम पुष्पित हो उठा। गांधीजी ने १९२२ में स्पष्ट शब्दों में कहा था कि भारतीय जनता के भविष्य का निर्माण भारत की जनता द्वारा ही होना चाहिए। केवल उनके द्वारा प्रतिपादित निर्णय पर ब्रिटिश संसद स्वीकृति की मोहर लगा सकती है। गाँधीजी ने कहा था—"स्वराज्य, ब्रिटिश संसद द्वारा भारत को कोई मुफ्त उपहार नहीं होगा। यह भारत की पूर्ण आत्माभिव्यक्ति की, संसद के अधिनियमों के रूप में, घोषणा होगी। भारत की जनता की इच्छाओं की यह केवल एक उदार स्वीकृति होगी।"[1]

इसके बाद, जब से स्वराज्य पार्टी का निर्माण हुआ, वह प्रारम्भ से ऐसा प्रयत्न करता रहा कि संविधान गठन के लिए एक संविधान सभा का निर्माण किया जाए। भारत में मार्क्सवाद के प्रथम प्रवक्ता एम. एन. राय ने तो साफ-साफ यह मांग की कि भारत के भविष्य की राजनीतिक संरचना का निर्धारण करने के लिए एक संविधान सभा गठित की जाये। लेकिन, नक्कारखाने में तूती की सदा कौन सुनता। कमजोर भारतीयों की यह माँगें ब्रिटिश संसद की दीवारों से टकरा-टकरा कर लौट आतीं।

१९३४ में—संविधान सभा—की मांग ने बल पकड़ा। स्वराज्य पार्टी ने कुछ कड़े शब्दों में आत्म-निर्णय की भावना पर बल दिया और मांग की कि "इस सिद्धांत को लागू करने का एक मात्र उपाय भारत के सभी वर्गों की प्रतिनिधि संविधान सभा बुलाना है, जो कि एक सर्वमान्य संविधान का निर्माण करेगी।"

---

1. GANDHIJI—"Swaraj will not be a free gift of the British Parliament. It will be a declaration of India's full self-expression, expressed through an act of Parliament. But it will be merely a courteous ratification of the declared wish of the people of India."

Scanned with CamScanner

१९३९ में यह आवाज और भी बुलन्द हुई। कांग्रेस ने घोषित किया—"एक स्वतंत्र देश के संविधान के निर्माण का एकमात्र तरीका संविधान सभा है। केवल प्रजातंत्र और स्वतंत्रता में विश्वास न रखने वाले ही इसका विरोध कर सकते हैं।[1]"

शायद कांग्रेस के यह प्रस्ताव रद्दी की टोकरियों में ही पड़े रह जाते, परन्तु इसी वर्ष अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में एक तेज भूकम्प आया। द्वितीय विश्व-युद्ध छिड़ गया और परिस्थितियां बदल गईं।

ऐटली की घोषणा

द्वितीय विश्व-युद्ध की समाप्ति के पश्चात् ब्रिटेन की नई श्रमिक सरकार के सामने यह स्पष्ट हो गया कि भारत को स्वतंत्र करने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। १५ मार्च, १९४६ को ब्रिटेन के प्रधानमंत्री ऐटली ने हाऊस ऑफ कामन्स में घोषणा की कि ब्रिटेन भारत को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करना चाहता है। तथा, अब भारत की जनता स्वयं अपना संविधान बनायेगी। उन्होंने कहा—"हमने यह निर्णय किया है, कि भारतीयों द्वारा भविष्य के लिए संविधान बनाने की तुरन्त व्यवस्था की जायेगी।"

निस्संदेह प्रधानमंत्री ऐटली ने कुछ सुझाव भी दिये थे कि नया संविधान किस प्रकार का होना चाहिए। परन्तु यह स्पष्ट था कि संविधान सभा उन सुझावों को 'सधन्यवाद' लौटा भी सकती थी।

संविधान सभा का गठन

जुलाई १९४६ में संविधान सभा के सदस्यों का निर्वाचन हुआ। निर्वाचन किया प्रांतीय विधान सभाओं के सदस्यों ने। इसके अतिरिक्त देशी रियासतों के प्रतिनिधि भी इसमें सम्मिलित किए गए। २९६ सदस्यों की संविधान सभा में—कांग्रेस के २०५, मुस्लिम लीग के ७३ और १८ स्वतन्त्र उम्मीदवार थे। परन्तु यह उल्लेखनीय है कि मुसलमानों के लिए सुरक्षित ७९ स्थानों में कांग्रेस को केवल तीन स्थान ही प्राप्त हुए थे। इस तरह मुस्लिम लीग की दृष्टि में कांग्रेस एक "हिन्दुओं का संगठन और साम्प्रदायिक संस्था" थी। निःसन्देह, कांग्रेस को कई स्वतन्त्र सदस्यों का समर्थन भी प्राप्त था।

संविधान सभा में देश के लगभग सभी प्रसिद्ध नेताओं और कानूनी विद्वानों का समावेश था। सर्वश्री नेहरू, सरदार पटेल, डॉ० राजेन्द्रप्रसाद, गोविंदवल्लभ पंत, खान अब्दुल गफारखाँ, के.एम.मुन्शी, बी.एन.राव, डॉ. राधाकृष्णन, आचार्य कृपलानी, एच. वी. कामथ, भीमराव अम्बेडकर, डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी जैसे मस्तिष्क संविधान सभा की शोभा थे। कुँजरु भी थे और सरोजनी नायडू भी। विद्वानों की यह सभा, भारत का संविधान बनाने के लिए सर्वथा उपयुक्त थी।

---

1. CONGRESS RESOLUTION 1939—"The Constituent Assembly is the only democratic method of determining the constitution of a free country, and no one who believed in democracy and freedom can possibly take exception to it."

Scanned with CamScanner

मुस्लिम लीग द्वारा असहयोग

संविधान सभा के गठन से यह स्पष्ट था कि इसमें कांग्रेस का स्पष्ट बहुमत है। तो भी कांग्रेस के लोग एक सर्वसम्मत संविधान बनाना चाहते थे। परन्तु मुस्लिम लीग के शक्की और शरारती दिमाग को यह स्वीकार नहीं था। उसने घोषणा की कि वह संविधान सभा की कार्यवाहीं में भाग नहीं लेगी। यह अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण निर्णय था। 'दो राष्ट्रों का सिद्धांत' अपना शर्मनाक खेल खेल रहा था।

तो भी, इस आशा के साथ कि सुबह का भूला शाम को घर आ जाएगा, मुस्लिम लीग के सदस्य आज नहीं तो कल संविधान सभा में लौट आयेंगे, संविधान सभा का कार्य प्रारम्भ हुआ। परन्तु संविधान सभा में, मुस्लिम लीग के लिए सुरक्षित सभी कुर्सियाँ आखिर तक खाली ही रहीं। इस बीच भारत का विभाजन हो जाने से तो मुस्लिम लीग द्वारा संविधान सभा की कार्यवाही में भाग लेने का प्रश्न ही समाप्त हो गया।

संविधान सभा के मार्ग में कठिनाइयाँ

संविधान सभा को एक महान् उद्देश्य की पूर्ति करनी थी। परन्तु उसके मार्ग में अनेक तरह की उलझनें, समस्याएँ और कठिनाइयाँ थीं, जिनका समाधान आवश्यक था—

(१) **अत्यन्त उदार संविधान की आकांक्षा**—स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भारत के हजारों-लाखों नवयुवकों ने आन्दोलन में भाग लिया था। ब्रिटिश शासन के दौरान उनके साथ तरह-तरह की कठोर और बर्बर यातनाएँ की गई थीं। इनकी याद संविधान सभा के सदस्यों के मन पर से अभी तक धुमिल न हुई थी। संविधान निर्माता के विशेष रूप से कुछ सदस्य चाहते थे कि नया संविधान इस प्रकार से बनाया जाये कि उसमें बर्बरता या निरंकुशता की कतई गुँजाइश ही न रहे।

दूसरी, ओर इसके परस्पर विरोधी विचार भी सदस्यों के मन में थे।

(२) **स्वतन्त्रता का सशक्त प्रहरी**—संविधान सभा के सदस्य, इस तथ्य से भलीभाँति परिचित थे कि स्वतंत्रता के पश्चात् भारत के दायित्वों में वृद्धि हो जाएगी। स्वतन्त्रता की रक्षा और शासन के स्थायित्व और देश की एकता के लिए यह आवश्यक है कि देश में एक कठोर शासन व्यवस्था हो। यह विशेष रूप से इस लिए भी आवश्यक था, क्योंकि भारत में भाषा, रीतिरिवाज, तौर-तरीके और उपासना पद्धति के आधार पर पर्याप्त विभिन्नता थी।

(३) **मुस्लिम लीग का असहयोग**—राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्तिम वर्षों में मुस्लिम लीग के व्यवहार ने भारतीय नेताओं के मन में अत्यन्त निराशा उत्पन्न कर दी थी। मुस्लिम लीग के सदस्यों ने तो संविधान सभा की कार्यवाहियों में कभी भाग नहीं लिया। पाकिस्तान भी बन गया। फिर भी भारत में करोड़ों मुसलमान रहे और संविधान सभा के सदस्यों के मन में यह भावना थी कि मुसलमानों का विश्वास भी उन्हें प्राप्त रहे, परन्तु इसके साथ ही फिर से पृथकतावादी विचार न पनपने पाएँ।

Scanned with CamScanner

(४) **देशी रियासतों की समस्या**—भारत अनेक वर्षों तक छोटी-छोटी रियासतों में विभक्त रहा है। कैबिनेट मिशन तथा माउंट बैटन योजना द्वारा देशी रियासतों को इस बात की स्वतंत्रता दे दी थी कि वे चाहें तो अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखें, अथवा भारत में सम्मिलित हो जाएँ। यह घोषणा भारतीय एकता के लिए खतरनाक सिद्ध हो रही थी। क्योंकि अधिकांश राजा लोग अपने राज्यों के स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रखने के पक्ष में थे। उनमें से कइयों ने संविधान सभा के मार्ग में अनेक तरह की बाधाएँ उत्पन्न कर दीं। परन्तु अन्त में लौहपुरुष सरदार पटेल के कौशल से देशी रियासतों ने भारतीय संघ में विलय स्वीकार कर लिया और इस समस्या का समाधान हो सका।

(५) **विभिन्न विरोधी विचारधाराएँ**—संविधान सभा में भारत की हर विचारधारा का प्रतिनिधित्व था। इसमें पूंजीवाद के समर्थक भी थे और समाजवाद के प्रवर्तक भी। हिन्दू महासभाई भी थे और साम्यवादी भी। एक ओर ऐसे लोग थे जो भारत को आवश्यक रूप से राष्ट्रमण्डल का सदस्य बनाये रखना चाहते थे, दूसरी ओर इसके विरोधी थे। कुछ सदस्य चाहते थे कि नागरिकों को सम्पत्ति का अधिकार दिया जाये, कुछ इसके विरोधी थे। ऐसे भी सदस्य थे जो भारत में अध्यक्षात्मक शासन चाहते थे, परन्तु ऐसे भी बहुत सदस्य थे जो इसके विरोधी थे। इन सबके बीच समन्वय अत्यन्त कठिन कार्य था।

संविधान सभा के सम्मुख यह सब कठिनाइयाँ मुँह बाये खड़ी थीं। 'सभा' को न केवल इनको पार करना था, बल्कि एक ऐसे संविधान का निर्माण करना था जो भारत की परिस्थितियों के अनुरूप होते हुए भी आदर्श भी हो और स्थायी भी बन सके।

संविधान का निर्माण

९ दिसम्बर १९४६ को संविधान सभा का प्रथम अधिवेशन हुआ। श्री सच्चिदानंद सिन्हा इसके अस्थायी अध्यक्ष चुने गए।

दो दिन के पश्चात् ११ दिसम्बर को—त्याग, तपस्या और सादगी के प्रतीक डॉ० राजेन्द्रप्रसाद को संविधान सभा का, सर्वानुमति से अध्यक्ष निर्वाचित किया गया।

मुस्लिम लीग के सदस्य संविधान सभा में कभी नहीं आए। परन्तु दूसरी ओर अप्रैल १९४७ तक कई देशी रियासतों ने भी संविधान सभा के प्रति अपना विश्वास व्यक्त कर दिया तथा इसकेलिये अपने प्रतिनिधि भी भेज दिये। केवल काश्मीर और हैदराबाद इसके अपवाद थे।

संविधान सभा में सबसे पहले जवाहरलाल नेहरू ने संविधान के उद्देश्यों के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव रखा। यह प्रस्ताव १३ दिसम्बर १९४६ को प्रस्तुत किया गया और २२ जनवरी १९४७ को इसे स्वीकृत कर लिया गया था। प्रस्ताव रखते हुए नेहरू ने कहा था—"यह संविधान सभा भारत को सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रा-

Scanned with CamScanner

त्मक गणराज्य घोषित करती है और भारत की शासन व्यवस्था के लिए एक संविधान के निर्माण का आरम्भ करती है ।" ऐसे में, जबकि भारत स्वतंत्र नहीं था, उसे "सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न" राज्य घोषित करना निश्चय ही एक महत्वपूर्ण पग था ।

संविधान के जो उद्देश्य नेहरू प्रस्ताव द्वारा घोषित किये गये थे, वे इस प्रकार हैं—

१. भारत एक पूर्णतया स्वतन्त्र और सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न गणराज्य होगा और अपने संविधान का निर्माण करेगा ।

२. भारतीय संघ और उसके अन्तर्गत विविध राज्यों में समस्त राज्यशक्ति का मूल स्रोत जनता होगी ।

३. भारत के सभी निवासियों को न्याय, सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक पद, अवसर एवं कानून की समानता, विचार, भाषण, अभिव्यक्ति व विश्वास आदि की स्वतंत्रता होगी तथा उनकी प्रत्याभूति होगी ।

४. अल्पसंख्यक वर्गों, पिछड़ी जातियों व कबाईली जातियों के हितों की रक्षा की समुचित व्यवस्था की जाएगी ।

५. भारत के राज्य क्षेत्र की अखण्डता को स्थिर रखा जाएगा जिससे कि यह प्राचीन देश विश्व में अपना उचित और सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त करे तथा विश्व शांति को प्रोत्साहन व मनुष्य मात्र के कल्याण में अपना पूर्ण और स्वेच्छापूर्वक योग दे सके ।

संविधान सभा ने अपना कार्य सुचारु रूप से सम्पादित करने के लिये कई समितियों और उप समितियों का गठन किया । इन सबसे महत्वपूर्ण समिति थी प्रारूप समिति । डॉ० भीमराव अम्बेडकर इस समिति के अध्यक्ष थे । समिति का कार्य था संविधान को लिखित रूप में, संविधान सभा के सम्मुख प्रस्तुत करना ।

अथक परिश्रम, गम्भीर चिंतन और लम्बे वाद-विवाद के पश्चात् मार्च १९४८ तक संविधान का प्रथम प्रारूप तैयार हो गया । यह प्रारूप जब संविधान सभा के सम्मुख प्रस्तुत किया गया, तो सदस्यों ने इतना अधिक उत्साह दिखाया कि ७,६३५ संशोधन प्रस्तुत किए गए, जिनमें से २,४७३ पर विचार भी हुआ ।

संविधान सभा में—प्रस्तावित संविधान के प्रारूप का प्रथम वाचन ४ नवम्बर १९४८ को प्रारम्भ हुआ और ५ दिन तक चला । द्वितीय वाचन अधिक समय तक चला । यह १५ नवम्बर १९४८ को प्रारम्भ होकर १७ अक्तूबर १९४९ तक चला । १४ नवम्बर १९४९ को अन्तिम तृतीय वाचन प्रारम्भ हुआ और २६ नवम्बर को वह समाप्त हो गया । इसी दिन संविधान सभा के अध्यक्ष ने इस पर अपने हस्ताक्षर किए और संविधान स्वीकृत घोषित किया गया ।

२६ जनवरी १९५० से भारत का नया संविधान प्रयुक्त हो गया । इसके निर्माण में दो वर्ष, ग्यारह महीने और तेरह दिन का अथक परिश्रम लगा ।

Scanned with CamScanner

संविधान निर्माताओं के कार्यों का मूल्यांकन

वास्तव में एक असम्भव-सी परिस्थिति में संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण किया था। अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए, जिनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, संविधान सभा के सदस्यों ने एक अत्यन्त उल्लेखनीय अभिलेख की रचना की थी। यह अभिलेख, संसार के अन्य संविधानों की तुलना में सबसे विस्तृत और सबसे लम्बा था।

संविधान के पग-पग पर, संसार के अन्य संविधानों की छाप स्पष्ट थी। वास्तव में श्री बी. एन. राव को संविधान सभा की ओर से संसार के महत्वपूर्ण संविधानों का अध्ययन करने के लिये विशेष रूप से उन देशों में भेजा गया था। संविधान सभा के सदस्यों ने कभी इस तथ्य को छिपाया नहीं कि वे इस संविधान में, सभी संविधानों की अच्छी बातें ग्रहण करना चाहते हैं। इसीलिए भारत के संविधान में आयरलैण्ड से नीति निर्देशक तत्व, स्विटजरलैण्ड से संघात्मकता, अमरीका से न्यायपालिका की पृथकता और सर्वोच्चता तथा ब्रिटेन से संसदीय शासन के रूप अपनाए गए थे। परन्तु भारतीय संविधान पर सर्वाधिक छाप तो ब्रिटिश संविधान और विशेष रूप से ब्रिटिश संसद की सन्तान १९३५ के अधिनियम की थी। **प्रो. श्रीनिवासन** ने अपनी पुस्तक—Democratic Government in India—में साफ-साफ लिखा है--**"नया संविधान, पुराने अधिनियम का, नई परिस्थितियों में नया संस्करण कहा जा सकता है।"**[1] इस प्रकार के आरोप कई सदस्यों ने संविधान सभा में ही लगाये थे। परन्तु ऐसे तर्कों का उत्तर देते हुए **बी. एन. राव** ने १५ अगस्त १९४८ को मद्रास के "हिन्दू" में प्रकाशित एक लेख में कहा था—"दूसरे देशों के अनुभवों से लाभ उठाना, अथवा अपने अतीत से लाभ उठाना बुद्धिमत्ता का मार्ग है।"[2]

यह भी आरोप लगाया जाता है कि संविधान सभा के सदस्य, वास्तव में जन-प्रतिनिधि नहीं थे। उनका निर्वाचन तो प्रान्तों की विधान सभाओं के सदस्यों ने किया था। वे एक तरह से मनोनीत सदस्य ही थे। परन्तु, इस आरोप में विशेष दम नहीं है। क्योंकि जिन प्रान्त की विधान सभाओं के सदस्यों ने निर्वाचन किया था, वे तो जनता के प्रतिनिधि ही थे। भारत के राष्ट्रपति का निर्वाचन भारत की जनता प्रत्यक्ष रूप से नहीं करती, बल्कि व्यवस्थापिकाओं के सदस्य ही उनका निर्वाचन करते हैं। क्या इससे यह कहना उचित होगा कि भारत के राष्ट्रपति जनता के प्रतिनिधि नहीं है?

---

1. PROF. SRINIVASAN—"The new Constitution may indeed be described as the working constitution of the country under the old Act adapted to its new political status."

2. B. N. RAY—"To profit from the experience of other countries or from the past experience of one's own is the path of wisdom."

Scanned with CamScanner

यह भी कहा जाता है कि संविधान सभा के अधिकांश सदस्य वकील और न्यायविद थे। इसलिये संविधान की भाषा और उसकी शैली सरल न होकर जटिल और कहीं-कहीं अस्पष्ट भी हो गई है।

संविधान में मौलिक अधिकारों के समावेश और विशेष रूप से सम्पत्ति के मौलिक अधिकार पर तीव्र वाद-विवाद हुआ। आलोचना का उत्तर देते हुए संविधान सभा में भीमराव अम्बेडकर ने कहा था कि सम्पत्ति के अधिकार का विरोध साम्यवादी सदस्यों की ओर से हो रहा है। वे तो भारत में प्रजातंत्र के स्थान पर सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद चाहते हैं।

क्या संविधान निर्माताओं ने एक सफल संविधान बनाया ? इसका उत्तर अभी नहीं दिया जा सकता। यह ठीक है कि संविधान निर्माताओं ने कठोर परिश्रम, विस्तृत अध्ययन और सतत साधना से, अनेक कठिनाइयों के उपरान्त भी अपनी ओर से एक श्रेष्ठ संविधान का निर्माण किया। परन्तु वह सफल है या नहीं, इसका प्रमाण तो आने वाले संकटकालीन वर्ष ही देंगे।

हाँ, अच्छा होता यदि भारत का संविधान संसदीय प्रजातंत्र के स्थान पर किसी कठोर और स्थायित्व वाली शासन प्रणाली की व्यवस्था करता—ऐसी, जैसी फ्रांस में है, स्विटजरलैण्ड में है, या अमेरिका में है। जो पूर्णतयः प्रजातांत्रिक भी होती और कठोर भी।

अभ्यास के प्रश्न

१. भारतीय संविधान के निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
(Discuss the procedure of the making of Indian Constitution.)

२. संविधान सभा के गठन और उसके कार्यों का वर्णन कीजिए।
(Discuss the composition and the functions of Constituent Assembly,)

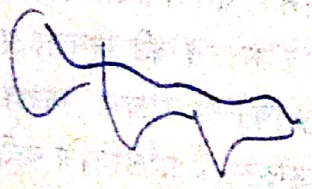

Scanned with CamScanner

अध्याय २

भारतीय संविधान की विशेषताएं
(Salient Features of the Indian Constitution)

> ११ दिसम्बर, १९४६ को जब डॉ० राजेन्द्रप्रसाद को संविधान सभा का अध्यक्ष बनाया गया, तो उन्होंने संविधान सभा के सदस्यों को सम्बोधित करते हुए कहा था—**हम आशा और प्रार्थना करते हैं कि इस संविधान सभा के परिश्रम से जो संविधान तैयार होगा, वह हमें ऐसी स्वतंत्रता प्रदान करेगा, जिस पर हम सब गर्व कर सकें।"**

क्या स्वतंत्र भारत का संविधान ऐसा है जिस पर हम सब गर्व कर सकते हैं? इस प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व हमें अपने संविधान की विशेषताओं पर दृष्टिपात कर लेना चाहिए।

संविधान की प्रस्तावना

भारतीय संविधान एक अत्यन्त गरिमामय प्रस्तावना से प्रारम्भ होता है, जो इस प्रकार है—

"हम भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने तथा इसके सब नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार रखने तथा प्रकट करने, विश्वास, धर्म और पूजा की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा व अवसर की समता प्राप्त कराने और उन सबमें व्यक्ति का मान और राष्ट्र की एकता निश्चित करने वाली बन्धुता को बढ़ाने के लिये दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख २७ नवम्बर, १९४९ को इस संविधान को अपनाते हैं।"

भारतीय संविधान की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

१. संसार का सर्वाधिक विस्तृत संविधान

भारत का संविधान संसार का सर्वाधिक विस्तृत और विशाल संविधान है। इसमें ९ अनुसूचियाँ, २२ भाग और ३९५ धाराएँ हैं। जबकि इसकी तुलना में संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान में ७ धाराएँ, आस्ट्रेलिया के संविधान में १२८, कनाडा के संविधान में १४७, सोवियत रूस के संविधान में १४६, नेपाल के संविधान में ७४ धाराएँ या अनुच्छेद हैं।

Scanned with CamScanner

भारत के संविधान को इतना अधिक भीमकाय बनाने के कई कारण थे। एक तो यह संविधान अमरीका या स्विस संविधान की तरह केवल संघीय संविधान ही नहीं है, बल्कि इसमें प्रान्तों के संविधानों का भी समावेश है। दूसरा—इसमें ऐसी अनेक बातों का, जिनका सामान्यतः दूसरे देशों के संविधानों में कोई उल्लेख नहीं होता, भी वर्णन किया गया है—जैसे लोक सेवा आयोग का गठन और कार्य, राष्ट्रपति के निर्वाचन की प्रणाली का विस्तार से वर्णन, नीति निर्देशक तत्वों का समावेश। तीसरे—संविधान निर्माता नहीं चाहते थे कि संविधान की धाराओं के सम्बन्ध में बाद में तनाव या मतभेद हों, इसलिये वे सब बातों का विस्तार से और स्पष्ट रूप से वर्णन करना चाहते थे।

संविधान की विस्तृतता के सम्बन्ध में सफाई देते हुए डा० अम्बेडकर ने कहा था—**"भारत की भूमि मूलतः अप्रजातांत्रिक है, जिसके ऊपर ही ऊपर प्रजातंत्र को सजाकर खड़ा कर दिया गया है। अतः ऐसी परिस्थिति में बुद्धिमानी तो इसमें है कि प्रशासन की रूपरेखा निर्धारित करने के लिए विधान मंडलों पर भरोसा नहीं किया जाए। संविधान में इन्हें समाविष्ट करने का यही औचित्य है।"**[1]

तो भी संविधान की अधिक लम्बाई के कारण इसकी आलोचना भी हुई है। डा० जैनिंग्स ने कहा—**"भारत का संविधान, लम्बा, विस्तृत और कठिन है।"**[2] इसी प्रकार **प्रो० श्रीनिवासन** ने लिखा **"हमारा नया संविधान न केवल एक संविधान है, बल्कि एक विस्तृत कानूनी संहिता भी है।"**[3] स्वयं डा० राजेन्द्रप्रसाद ने कहा था कि भारतीय संविधान में केन्द्रों और प्रान्तों के बीच शक्तियों का विभाजन करते हुए अत्यधिक विस्तार का सहारा लिया गया है।[4]

संविधान विस्तृत अवश्य है, परन्तु तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए, तथा विभिन्न विरोधी मतों के समाधान की समस्या को देखते हुए, साथ ही भविष्य में गम्भीर व्याख्या सम्बन्धी संकटों को उत्पन्न न होने की भावना का आदर करते हुए

---

1. DR. AMBEDKAR—"Democracy in India is only a top dressing on the soil which is essentially undemocratic. In these circumstances it is wiser not to trust the legislatures to prescribe forms of administration. This is the justification for incorporating them in the Constitution."

2. DR. JENNINGS—"The Constitution is lengthy, detailed and rigid."

3. N. SRINIVASAN—"The new Constitution is not merely a constitution but also a detailed legal code....."

4. DR. RAJENDRA PRASAD—"The Constitution has gone into great details regarding the distribution of powers and functions between the Union and States in all aspects of administrative and other activities."

Scanned with CamScanner

कहा जा सकता है कि संविधान के विस्तृत होने में कोई हानि नहीं है। डा० एम. पी. शर्मा के अनुसार—"भारत की जटिल परिस्थितियों तथा भारतीय जनता की राजनीतिक अनुभव हीनता को दृष्टि में रखते हुए भारतीय संविधान के निर्माताओं ने यही उचित समझा कि सब बातें स्पष्ट रूप से संविधान में रख दी जाएँ और कोई खतरा न उठाया जाए।" इसी पक्ष का समर्थन भारत के भूतपूर्व महान्यायविद श्री एम. सी. सीतलवाद ने अपनी पुस्तक The Indian Constitution : 1950-65 में भी किया है। उनका मत है कि भारत के संविधान के अधिक विस्तृत और बड़ा होने का एक कारण तो यह कि है जिस १९३५ के अधिनियम पर यह आधारित है, वह अधिनियम ही अधिक विस्तृत था। अतः एक विस्तृत संविधान बनाना सुविधाजनक था और दूसरा भारत का संविधान केवल संघीय सरकार के स्वरूप का निर्धारण ही नहीं करता, बल्कि प्रदेशों की सरकारों के स्वरूप को भी निर्धारित करता है अतः संघ और प्रान्तों के सम्बन्ध एकदम स्पष्ट हों-इसलिए संविधान का विस्तृत होना आवश्यक था। सीतलवाद के शब्दों में-"अतः यह कहा जा सकता है कि संविधान की विस्तृता, केवल अतीत की एक विरासत ही नहीं है, बल्कि जानबूझ कर अपनाया गया एक ऐसा ढांचा है, जो विशेष रूप से भारत की स्वतन्त्रता के कारण उत्पन्न विशेष परिस्थितियों के अनुरूप हो।"[1]

२. लिखित संविधान

संसार के अधिकांश संविधानों की तरह भारत का संविधान भी लिखित और निर्मित है। अलिखित संविधानों का एक मात्र, परन्तु शानदार उदाहरण ब्रिटेन का संविधान है। भारत का संविधान कनाडा, रूस, अमरीका और स्विस संविधान की तरह स्पष्ट रूप से लेखबद्ध है।

परन्तु, लिखित संविधान के साथ भारत के संविधान में भी, अन्य देशों के संविधानों के समान, अलिखित परम्पराएँ जुड़ गई हैं। संविधान के पूर्णतयः लिखित होते हुए भी इसमें अलिखित परम्पराएँ विकसित हो रही हैं। उदाहरण के लिए यह एक परम्परा बन गई है कि कोई भी व्यक्ति लगातार तीसरी बार भारत का राष्ट्रपति नहीं बन सकता। जबकि संविधान में केवल इतना ही लिखा है—"वह दुबारा चुना जा सकता है।" इसी प्रकार यह भी एक परम्परा बन गई है कि लोकसभा और विधान सभाओं के 'स्पीकर' निर्वाचित होने के बाद, दल की सक्रिय राजनीति में भाग नहीं लेते। इसी प्रकार यह भी स्पष्ट हो गया है कि राज्यपाल केन्द्रीय सरकार का प्रतिनिधि है और वह गृह मंत्री के इच्छानुसार कार्य करता है।

---

1. M. C. SETALVAD—"It can, therefore, well be said that the comprehensiveness of the constitutional provisions that we have is not merely a heritage of the past but a framework deliberately adopted to serve the peculiar needs which faced our country at the advent of independence."

Scanned with CamScanner

इस प्रकार भारत का संविधान मूल रूप से लिखित होते हुए भी उसमें अलिखित परम्पराओं का समावेश होता जा रहा है।

३. सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में लिखा है—

"हम भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए.....आज तारीख २६ नवम्बर १९४९ को,इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"

प्रस्तावना से स्पष्ट है कि भारत का संविधान भारत को एक "सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य" घोषित करता है। संविधान के अनुसार यह भी स्पष्ट है कि संप्रभुता का वास भारत की जनता में माना गया है। सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न होने के नाते यह मान लिया गया है कि भारत अपने आन्तरिक और वैदेशिक सम्बन्धों के मामले में पूरी तरह स्वतंत्र होगा।

परन्तु संविधान सभा में ही कुछ आलोचकों ने कहा था कि भारत का राष्ट्र-मंडल में बने रहना, 'सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता' का विरोधी है। क्योंकि राष्ट्रमंडल की अध्यक्षता, ब्रिटिश क्राउन करता है। इस आलोचना का सशक्त उत्तर श्री नेहरू, सरदार पटेल और बी. एन. राव ने दिया था।

नेहरू ने कहा था"राष्ट्रमंडल किसी भी स्थिति में अन्य राज्यों से बढ़कर एक विशेष राज्य नहीं है। हमने तो स्वतंत्र राष्ट्रों से स्वतंत्र सम्पर्क स्वीकार किया है। किन्तु राष्ट्र-मंडल में सम्राट की औपचारिक स्थिति के साथ किन्ही विशेष कर्तव्यों का उपबन्ध नहीं है। जहाँ तक भारत के संविधान का सम्बन्ध है, ब्रिटिश सम्राट के लिए कोई स्थान नहीं है और हम किसी प्रकार उसके राजभक्त नहीं होंगे।"[1] ऐसे ही विचार सरदार पटेल ने भी व्यक्त किये थे।

यह स्पष्ट कर दिया गया है कि राष्ट्र मंडल 'स्वतंत्र सदस्यों' की एक 'स्वतंत्र संस्था' है और भारत स्वेच्छा से उसका सदस्य बना है। भारत द्वारा राष्ट्रमंडल का सदस्य बनने से, नेहरू ने कहा, भारत की स्वतंत्र नीतियों में कोई परिवर्तन नहीं आयेगा।

संविधान की प्रस्तावना से यह भी प्रकट होता है कि भारत में सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता के साथ-साथ लोकतंत्रात्मक गणराज्य की स्थापना की गई है। भारत में

---

1. NEHRU—"It must be remembered that Commonwealth is not super-state in any sense of the term. We have agreed to consider the Queen as the symbolic head of the free association. But the Queen has no function attached to that in the Commonwealth. So far as the Constitution is concerned the Queen has no place in it and we shall owe no allegiance to her."

Scanned with CamScanner

शासन का अध्यक्ष—राष्ट्रपति होगा और उसके साथ ही भारत की सम्पूर्ण शासन व्यवस्था भी प्रजातांत्रिक होगी।

संविधान की प्रस्तावना में जिस शब्दावली का प्रयोग किया गया है उसके आधार पर सरलता से यह भी कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान का निर्माण भारत की जनता ने किया है। वही सर्वोच्च है। कहा गया है—"हम भारत के लोग इस संविधान को.....आत्मार्पित करते हैं।"

४. जन-कल्याणकारी राज्य की स्थापना

डा. बी.एम. शर्मा ने अपनी पुस्तक The Republic of India में लिखा है कि भारत का संविधान भारत को एक जन-कल्याणकारी राज्य घोषित करता है। यद्यपि संविधान की प्रस्तावना में ऐसा कहीं भी नहीं कहा गया है, परन्तु संविधान में उल्लिखित नीति निर्देशक तत्वों पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत को एक जन-कल्याणकारी राज्य घोषित किया गया है। **नीति-निर्देशक** तत्वों में कहा गया है—"राज्य जनता के 'जन-कल्याण' को प्रोत्साहित करने का प्रयत्न करेगा। और वह एक ऐसी समाज रचना को बनाने और बनाये रखने के माध्यम से करेगा जिसमें जनता को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय उपलब्ध हो सके।"[1] इससे स्पष्ट है कि संविधान के निर्माता भारत में एक जन-कल्याणकारी राज्य की स्थापना चाहते हैं। उपरोक्त नीति-निर्देशक तत्व के अतिरिक्त, संविधान में ऐसे और भी कई नीति-निर्देशक तत्वों का उल्लेख है, जो स्पष्ट रूप से जन-कल्याणकारी है।

इसके अतिरिक्त संविधान की प्रस्तावना से भी यह ध्वनित होता है कि संविधान एक जन-कल्याणकारी राज्य की स्थापना ही करना चाहता है। प्रस्तावना में कहा गया है कि संविधान का उद्देश्य—

सभी नागरिकों के लिए प्राप्त करना,
न्याय—सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक,
स्वतंत्रता—विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था और श्रद्धा की,
समानता—प्रतिष्ठा और अवसर की।[2]

जिस राज्य में नागरिकों को यह सब प्रदान करने का प्रयत्न किया जाए—वही तो लोक-कल्याणकारी राज्य है।

---

1. ART. 38—"The State shall strive to promote the welfare of the people by securing and protecting as effectively as it may a social order in which justice, social, economic ane political, shall inform all the institutions of national life."

2. *Preamble* of *Indian Constitution* aims
"To secure to all its citizens;
Justice—social, economic and political,
Liberty—of thought, expression, belief, faith and worshlp,
Equality—of status and opportunity."

Scanned with CamScanner

५. धर्म-निरपेक्ष राज्य

भारत एक विशाल देश है, जहाँ विभिन्न सम्प्रदायों और मत-मतान्तरों के व्यक्ति रहते हैं। परन्तु इस विभिन्नता में भी एकता का नाद सरलता से सुना जा सकता है। संविधान सभा में सबसे पहले बोलते हुए विश्व-प्रसिद्ध दार्शनिक डा. राधाकृष्णन् ने कहा था—"जिस प्रकार किसी ऑरकेस्ट्रा में कई प्रकार के वाद्य होने के कारण, उनमें से अनेक प्रकार की ध्वनियाँ निकलती हैं, परन्तु फिर भी उनकी ताल और लय समान होने के कारण वह एक मधुर संगीत को जन्म देते हैं। इसी प्रकार विभिन्न वाद्यों के मध्य भारत का 'स्वर' एक ही है।[1]

'विभिन्नता में एकता' भारत का मूल मंत्र रहा है। परन्तु इतनी विभिन्नता भी शायद संसार में और कहीं नहीं है। भारत की धार्मिक विभिन्नता के आधार पर, यह उचित ही था कि संविधान द्वारा भारत में श्रद्धा और उपासना की स्वतंत्रता प्रदान की गई और भारत को एक धर्म-निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया। संविधान सभी धर्मों और सम्प्रदायों के साथ एक समान व्यवहार का आश्वासन देता है।

परन्तु, धर्म निरपेक्षता का अर्थ धर्म विरोध नहीं है। बहुत-से 'बुझकड़' धर्म-निरपेक्षता के दिखावटी उन्माद में धार्मिक कार्यों का विरोध करने लगते हैं। उदाहरणार्थ संसद सदस्य राजनारायण ने यह आपत्ति उठाई थी कि चुनाव जीतने के बाद राष्ट्रपति वी. वी. गिरि मन्दिर में क्यों गए थे? या पण्डित नेहरू को इस बात की बहुत परेशानी थी कि सोमनाथ के मन्दिर का जीर्णोद्धार क्यों किया गया। संसद सदस्य **एच. वी. कामथ** ने साफ-साफ कहा था—"राज्य का किसी खास धर्म से सम्बन्ध न रखने का यह अर्थ नहीं है कि वह धर्म-विरोधी है अथवा अधार्मिक है। भारत को धर्म-निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। एक धर्म-निरपेक्ष राज्य न तो नास्तिक होता है, न धर्म-विरोधी और न अधार्मिक ही।"[2]

धर्म-निरपेक्षता का सीधा-सा अर्थ है कि शासन धर्म के मामले में निष्पक्ष रहेगा। वह धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा। **राजगोपालाचार्य** ने संविधान की धर्म-निरपेक्षता की व्याख्या करते हुए कहा था—"धर्म-निरपेक्ष भारतीय राज्य धर्म को न तो हतोत्साहित करेगा, न उसका विरोध ही। वह सभी धर्मों तथा उनकी

---

1. DR. RADHAKRISHNAN—"India is a symphony where there are, as in an orchestra, each with its special shound, all combining to interpret one particular score. It is this kind of combination that this country has stood far."

2. H. V. KAMATH—"When I say that a state should not identify itself with any particular religion, I do not mean to say that a state should be anti-religious or irreligious. We have certainly declared India to be a secular state. But to my mind, a secular state is neither a Godless State nor an irreligious nor an anti-religious State."

Scanned with CamScanner

संस्थाओं में निष्पक्ष व्यवहार करेगा। वह एक धर्म, एक राज्य अथवा धर्म-सापेक्ष राज्य के सिद्धांत को अस्वीकार करता है।"[1]

वास्तव में स्पष्ट रूप से संविधान में कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि भारत एक धर्म-निरपेक्ष राज्य है। परन्तु संविधान की प्रस्तावना और मौलिक अधिकारों की सूची देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि संविधान निर्माताओं ने भारत को एक धर्म-निरपेक्ष राज्य बनाया है।

यह एक दूसरी बात है कि भारत की केन्द्रीय सरकार के आचरण से अब धर्म-निरपेक्षता के स्थान पर साम्प्रदायिकता ही प्रकट होती है। हिन्दुओं की कुप्रथाओं को समाप्त करते के लिए हिन्दू कोड बिल तो बन सकता है, परन्तु मुसलमानों की बहुपत्नि प्रथा को अवैध घोषित करने के लिये सरकार के हाथ काँपते रहे हैं, जबकि डॉ० अम्बेडकर ने कहा था—"धर्म-निरपेक्षता का अर्थ सिर्फ यही है कि संसद को जनता पर कोई विशेष धर्म लादने की शक्ति नहीं होगी। संविधान द्वारा सिर्फ यही नियंत्रण लगाया गया है।"

६. संसदीय शासन प्रणाली

भारत में संविधान निर्माताओं ने संसदीय शासन प्रणाली को ही अपनाया है। उनका मत था कि १९१९ के अधिनियम के पश्चात् भारत की जनता इस शासन पद्धति में भाग लेकर व्यावहारिक अनुभव प्राप्त कर चुकी है। १९३५ के अधिनियम के अनुसार प्रांतीय सरकारों में भारत के नेता स्वःशासन की संसदीय शैली से भली-भाँति परिचित हो चुके हैं। अतः इस पद्धति का व्यावहारिक अनुभव होने के कारण भारत के लिए यह पद्धति ही सर्वथा उपयुक्त होगी।

जब संविधान सभा में कुछ सदस्यों ने इस पद्धति की कमजोरियाँ बताते हुए भारत में अध्यक्षात्मक पद्धति को अपनाने का विरोध किया तो नेहरू और मुन्शी ने कहा कि अध्यक्षात्मक सरकार से देश में तानाशाही सरकार की स्थापना का खतरा है। संसदीय शासन का यह लाभ रहेगा कि कार्यपालिका सदा व्यवस्थापिका के सम्मुख उत्तरदायी रहेगी।

संसदीय शासन में सामान्यतः संकटों का सामना करने की क्षमता नहीं होती। इस कमजोरी पर सफलता प्राप्त करने के लिए भारत के राष्ट्रपति को वास्तविक संकटकालीन शक्तियों से सुशोभित किया गया है। यों भी भारत के राष्ट्रपति को

---

1. C. RAJGOPALACHARI—"It has been repeatedly affirmed that when the Indian Constitution laid down that India shall be a secular, it was intended that the state should not discourage or be hostile towards religion but what was intended was impartiality towards all creeds and denominations. It was a refusal to accept the theory that different religions make different nations or that the state should belong to one religion."

Scanned with CamScanner

केवल रबड़ की मोहर नहीं बनाया गया है। इसी कारण न्यायाधीश बी. पी. मुखर्जी ने कहा—"भारतीय संविधान अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के साथ संसदीय प्रणाली का गठबन्धन करता है।"[1] और इसीलिए डॉ० अम्बेडकर ने भी कहा है—"इसमें उत्तरदायित्व तथा स्थिरता दोनों है।"[2]

परन्तु भारत के लिए संसदीय शासन प्रणाली अपनाने का सबसे बड़ा कारण भारत के अधिकांश विद्वानों पर ब्रिटेन की राजनीतिक संस्कृति की स्पष्ट छाप प्रतीत होती है। भारत में संसदीय शासन अपनाते समय यह भुला दिया गया कि भारत में इंग्लैण्ड की सी परिस्थितियाँ नहीं हैं। परिणाम यह है कि आज भारत का संसदीय शासन लड़खड़ा रहा है और एम. सी. छागला, न्यायमूर्ति बी. पी. सिन्हा, पत्रकार डी. आर. मानकेकर, जनरल करिअप्पा जैसे विद्वानों को यह कहना पड़ रहा है कि भारत में अध्यक्षात्मक शासन पद्धति अपनाई जानी चाहिए।

इस सम्बन्ध में यह देखना रोचक होगा कि द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद अमरीकियों ने जापान के लिये संविधान बनाया और उन पर जबर्दस्ती लादा। अमरीका नहीं चाहता था कि जापान एक सशक्त राष्ट्र बने, इसलिये जापान के लिये जान बूझकर ब्रिटेन की तरह की संसदीय व्यवस्था प्रतिपादित की गई।

७. सशक्त न्यायपालिका

यद्यपि भारतीय संविधान मुख्य रूप से ब्रिटिश शासन पद्धति पर आधारित है, तथापि न्यायपालिका के क्षेत्र में अमरीकी पद्धति अपनाई गई है।

अमरीका की न्यायपालिका के समान भारत की न्यायपालिका को, कार्यपालिका और व्यवस्थापिका से पृथक किया गया है। अमरीका की ही न्यायपालिका के समान भारत में भी न्यायपालिका को सशक्त और संविधान का प्रहरी बनाया गया है।

भारतीय संविधान के अनुसार न्यायपालिका को संविधान की व्याख्या करने का अधिकार दिया गया है। उसे यह भी अधिकार दिया गया कि वह नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करे। न्यायपालिका को संघात्मकता का रक्षक भी बनाया गया है। केन्द्र और प्रांतों के विवाद में वह निष्पक्ष होकर निर्णय देती है।

भारतीय न्यायपालिका की सबसे प्रमुख शक्ति, अमरीकी न्यायपालिका की भाँति न्यायिक पुनरीक्षण की शक्ति है। भारतीय संसद द्वारा बनाया गया कोई भी

---

1. JUSTICE B. P. MUKHERJI—"The Indian Constitution combines the Presidential system of Government with responsible executive drawn from the Parliament."

2. DR. AMBEDKAR—"The chief merit of parliamentary government lay in its ability to satisfy the essential test of democracy, a combination of stability and responsibility."

Scanned with CamScanner

कानून, जो संविधान की आत्मा के विपरीत हो, उसे न्यायपालिका अवैध घोषित कर सकती है। इस प्रकार न्यायपालिका संसद पर भी एक सांवैधानिक अंकुश का कार्य करती है।

संविधान ने ऐसी भी व्यवस्थाएँ की हैं कि न्यायपालिका पर शासन के किसी अन्य अंग का दबाव न हो और वह स्वतंत्रतापूर्वक, निष्पक्षता के साथ अपना कार्य कर सके। उदाहरणार्थ न्यायाधीश के निर्णय या आचरण पर संसद या विधान मण्डलों में वाद-विवाद नहीं किया जा सकता है।

जो शक्तियाँ और अधिकार भारतीय न्यायपालिका को प्रदान किये गये हैं, न्यायपालिका ने अत्यन्त गरिमा के साथ उनका निर्वाह किया है। प्रयाग उच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश **श्री एस. एस. धवन** ने अपने एक लेख में ठीक ही लिखा है—**"सर्वोच्च न्यायालय ने संसार के सर्वश्रेष्ठ न्यायालयों के समान अपना स्तर बनाये रखा है और यह गरिमा व निष्पक्षता में संसार के एक भी न्यायालय से पीछे नहीं है।"**[1]

विशेष रूप से सर्वोच्च न्यायालय द्वारा, राजाओं के प्रिवीपर्सों के उन्मूलन सम्बन्धी राष्ट्रपति के अध्यादेश को अवैध घोषित करके यह सिद्ध कर दिया है कि भारत का न्यायालय सर्वोच्च, स्वतत्र और निष्पक्ष है, वह नागरिकों के अधिकारों का रक्षक है, शासन उसे खरीद नहीं सकता। भारत की जनता न्यायपालिका पर स्वाभाविक रूप से अभिमान कर सकती है।

८. संघात्मक शासन प्रणाली

भारत का संविधान भारत में एक संघात्मक शासन की व्यवस्था करता है।

संघात्मकता का जिक्र आते ही विद्वान अमरीका और स्विटजरलैण्ड के मानदण्डों के आधार पर भारत की संघात्मकता को परखने लगते हैं। परन्तु जैसा कि प्रो० बलराज मधोक ने अपनी पुस्तक—Indianisation—में लिखा है—भारत और अमरीका की स्थिति में बहुत अन्तर है। अमरीका, कई राज्यों को मिलाकर एक राज्य संघ बना है। जबकि भारत अत्यंत प्राचीन काल से एक राज्य एक देश है। इसे यदि संविधान में 'राज्यों का संघ' कहा गया है तो इसका यह तात्पर्य नहीं है, कि भारत एक नया देश या नया राज्य है। इसलिए स्वाभाविक है कि भारत की संघात्मक व्यवस्था, अमरीका या किसी अन्य देश की संघात्मक व्यवस्था से सर्वथा भिन्न है।

फिर भी, संविधान भारत में एक संघात्मक शासन की व्यवस्था करता है। संघात्मकता के तीनों आवश्यक लक्षण—एक लिखित संविधान, शक्ति का विभाजन और स्वतन्त्र न्यायपालिका भारत में मौजूद हैं।

---

1. S. S. DHAWAN—"The Supreme Court has set the pace and its standard of independence is one of the highest and second to no other court, in the world."

Scanned with CamScanner

निस्संदेह भारत की शासन व्यवस्था संघात्मक होते हुए भी संघीय सरकार को सशक्त बनाने का प्रयत्न किया गया है। इसलिए कई विद्वानों को भारत के संघात्मक स्वरूप पर ही सन्देह होने लगा है। **प्रो० के. सी. व्हीयर** का कहना है—"भारत का नया संविधान ऐसी शासन व्यवस्था को जन्म देता है जो अधिक से अधिक अर्ध संघी है, स्वरूप में लगभग प्रक्रमणशील, भारत एक एकात्मक राज्य है जिसमें गौण रूप से कतिपय संघीय विशेषताएँ हैं न कि यह एक संघात्मक राज्य हैं, जिसमें कतिपय एकात्मक विशेषताएँ हैं।"[1] स्वयं **डा० अम्बेडकर** ने भी स्वीकार किया था—**"संविधान को संघात्मकता के कठोर ढांचे में नहीं ढाला गया था।"**[2]

संविधान के प्रसिद्ध विद्वान **आईवर जैनिंग्स** ने भारत को एक ऐसा संघ कहा था, जिसमें केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति बहुत सशक्त हो।"[3]

निस्सन्देह भारत में अमरीका समान राज्यों के पृथक संविधान नहीं हैं, न ही यहाँ राज्यों के न्यायालय केन्द्रीय न्यायालय से अलग हैं, न ही व्यक्तियों को दोहरी नागरिकताएँ प्राप्त हैं, न ही राज्यों को संविधान में संशोधन करने में विशेष हाथ है, न ही आर्थिक मामलों या विधाई मामलों में राज्य पूरी तरह स्वतन्त्र हैं। स्पष्ट है कि भारत को कठोर पारम्परिक संघ नहीं कहा जा सकता। इस सम्बन्ध में **पश्चिम बंगाल विरुद्ध भारत सरकार** के विवाद में सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश **श्री सुब्बाराव** का यह निर्णय एकदम सही प्रतीत होता है—"संविधान सभा के परिश्रम से तैयार संविधान किसी पारम्परिक संघात्मक स्वरूप का पालन नहीं करता।"[4]

वास्तव में भारत की परिस्थितियों को देखते हुए संविधान निर्माताओं ने यह ठीक ही किया कि केन्द्र में एक शक्तिशाली सरकार की स्थापना की। यह भी सर्वथा उचित है कि केन्द्र की सरकार को संकटकालीन शक्तियों के अन्तर्गत ऐसी शक्तियाँ प्रदान की गई हैं, जिससे भारत के राज्यों का अस्तित्व ही समाप्त हो जाए। क्योंकि भारत की एकता के लिए यह अत्यन्त आवश्यक था। **डा० अम्बेडकर** ने तो साफ-साफ कहा

---

1. K. C. WHEARE—"The Indian Constitution establishes a system of government which is almost quasi-federal, almost devolutionary in character, a unitary state with subsidiary federal features rather than Federal State, with unitary features."

2. DR. AMBEDKAR—"The Constitution has not been set in tight mould of federation."

3. JENNINGS—"...A federation with a strong centralising agency."

4. JUSTICE SUBBARAO—"In the majority decision State of West Bengal *vs.* Union of India—"The result of Constituent Assembly's labours was a consititution which was not true to any traditional pattern of federation."

Scanned with CamScanner

था—मैं एक शक्तिशाली केन्द्र के पक्ष में हूँ । यह १९३५ के अधिनियम के अन्तर्गत निर्मित केन्द्र से भी अधिक शक्तिशाली होगा ।"[1]

९. मौलिक अधिकार

भारतीय संविधान का यदि सबसे शानदार अध्याय पूछा जाए तो सरलता से कहा जा सकता है–मौलिक अधिकारों सम्बन्धी अध्याय । किसी भी देश में प्रजातंत्र की कसौटी केवल एक ही है कि क्या वहां के नागरिकों को जीवन यापन के मौलिक अधिकार प्रदान किए गए हैं या नहीं । संविधान में मौलिक अधिकारों की सूची का होना मात्र ही पर्याप्त नहीं है बल्कि यह भी आवश्यक है कि उन अधिकारों के क्रियान्वयन का कोई ठोस उपाय और आश्वासन भी संविधान में होना चाहिए । भारतीय संविधान नागरिकों को मौलिक अधिकार और उसके क्रियान्वयन का आश्वासन भी देता है ।

ब्रिटेन मे मौलिक अधिकारों का उपयोग, नागरिक 'कामन लॉ' तथा 'रूल आफ लॉ' के माध्यम से करते हैं । अमरीकी संविधान जब बनाया गया, तो उसमें मौलिक अधिकारों का उल्लेख नहीं था । इसकी पूर्ति संविधान बनने के तुरन्त पश्चात् दस संशोधनों द्वारा की गई । सोवियत रूस के संविधान में भी मौलिक अधिकारों की एक शानदार सूची दर्शाई गई है, परन्तु वह केवल दिखावटी है ।

भारतीय संविधान की धारा १३ से ३२ तक मौलिक अधिकारों का वर्णन है । इसमें स्वतन्त्रता का अधिकार, समानता का अधिकार, सम्पत्ति का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार, धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार और सांवैधानिक उपचार का अधिकार सम्मिलित हैं ।

मौलिक अधिकारों के सम्बध में १९६७ में गोलकनाथ के विवाद में सर्वोच्च न्यायालय ने एक अत्यन्त शानदार निर्णय लिया । उसके अनुसार भारत की संसद को भी यह अधिकार नहीं है कि वह मौलिक अधिकारों में किसी प्रकार का संशोधन कर सके । अब यह एक विवाद का विषय बन गया है कि क्या सर्वोच्च न्यायालय को यह शक्ति है कि वह संसद की शक्ति पर ऐसी कोई मर्यादा लगाए । विशेष रूप से १५ दिसम्बर १९७० को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा राष्ट्रपति के उस आदेश को रद्द करने के पश्चात्, जिसके अनुसार राष्ट्रपति ने भारत के सभी राजाओं की मान्यता रद्द कर दी थी—यह विवाद अधिक बल पकड़ गया है कि क्या नागरिकों को दिए गए मौलिक अधिकार इतने पवित्र हैं कि उनमें संसद भी संशोधन नहीं कर सकती ।

भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों की शानदार व्यवस्था के कारण ही प्रसिद्ध विद्वान जैनिंग्स ने कहा था कि "संविधान व्यक्तिवादी आदर्शों पर आधारित

---

1. DR. AMBEDKAR—"I like a strong united centre much stronger than the centre we had created under the Government of India Act of 1935."

Scanned with CamScanner

है। और बर्क, जॉन स्टूअर्ट मिल, डायसी आदि इसकी प्रेरणा के स्त्रोत हैं।"[1]

१० नीति निर्देशक तत्व

संविधान निर्माताओं ने कभी इस तथ्य को छिपाया नहीं कि उन्होंने संसार के सभी संविधानों से श्रेष्ठ तत्व लेकर उसे भारतीय संविधान में समाविष्ट किया है। बी. एन. राव ने कहा था—"यह निस्सन्देह सत्य है कि भारत के संविधान ने अन्य देशों के संविधानों से बहुत सी बातें ली हैं।" उनका तर्क था—"दूसरे देशों के तथा अपने अतीत के अनुभवों का लाभ उठाना बुद्धिमता है।"[2]

भारतीय संविधान की एक महत्वपूर्ण विशेषता, यह है कि उसमें राज्य के नीति निर्देशक तत्वों का उल्लेख है। वास्तव में भारत के संविधान को यह आयरिश संविधान की देन है। संविधान में नीति निर्देशक तत्वों के समावेश का एक कारण यह भी है कि संविधान सभा से भी पूर्व मौलिक अधिकारों सम्बन्धी एक समिति बनाई थी उसने दो प्रकार के अधिकारों की सिफारिश की थी। एक वे जिनका पालन न्यायालयों द्वारा कराया जाए। और दूसरे वे जिनका पालन न्यायालयों द्वारा बाध्य न हो। १९४५ में सप्रू समिति की यह दूसरी सिफारिश भी नीति निर्देशक तत्वों का आधार थी। संविधान के चौथे अध्याय में नीति निर्देशक तत्वों का वर्णन किया गया है। यह तत्व यह बताते हैं कि भविष्य में राज्य को जनता के प्रति कौन से कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए।

नीति निर्देशक तत्वों में और मौलिक अधिकारों में एक महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि मौलिक अधिकार तो न्यायालयों द्वारा मान्यता प्राप्त हैं, परन्तु नीति निर्देशक तत्वों को न्यायालय क्रियान्वित नहीं कर सकता।

संविधान में नीति निर्देशक तत्वों की एक लम्बी सूची दी गई है। इनमें से कुछ समाजवादी हैं, कुछ गांधीवादी तथा अन्य उदारतावादी। उदाहरणार्थ, समाजवादी निर्देशक तत्व राज्य से यह आशा करता है—"सार्वजनिक हित के विरुद्ध धन के केन्द्रीयकरण को रोका जाए।" और गांधीवादी तत्व कहता है—"राज्य कृषि एवं पशुपालन का वैज्ञानिक ढंग से संचालन करेगा, गोवंश की रक्षा करेगा, विशेषकर बछड़ों, दूध देने वाले तथा भारवाही पशुओं की नस्ल का सुधार और वध निषेध करेगा और उदारतावादी तत्वों में से एक है—"राज्य समस्त भारतीय क्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान व्यवहार संहिता प्राप्त कराने का प्रयास करेगा।"

---

1. JENNINGS—"Essentially the Indian Constitution is an individualist document. Its prophets are Burke, Mile and Dicey."

2. B. N. RAO—"It is undoubtedly true that the draft has borrowed from other Constitutions...To profit from the experience of other countries or from the past experience of one's own is the path of wisdom."

Scanned with CamScanner

राज्य के नीति निर्देशक तत्वों का महत्व बताते हुए, भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायविद श्री एम. सी. सीतलवाद ने कहा था—"राज्य के यह नीति निर्देशक तत्व यद्यपि कानूनी प्रभाव से विहीन हैं, तथापि इन्होंने न्यायालयों के लिए प्रकाश स्तम्भों का कार्य किया है।"[1]

सर्वोच्च न्यायालय ने १९५७ में अपने एक निर्णय में कहा भी था—मौलिक अधिकार की सीमा निर्धारित करते समय किसी भी न्यायालय को नीति निर्देशक तत्व की पूरी तरह उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, बल्कि जहाँ तक सम्भव हो, दोनों के बीच एक उचित सन्तुलन के सिद्धान्त का पालन करते हुए, दोनों को क्रियान्वित करने का प्रयास करना चाहिए।"[2]

११. न अधिक लचीला, न अधिक कठोर

भारतीय संविधान न तो ब्रिटिश संविधान की तरह अधिक लचीला है और न ही अमरीकी संविधान की तरह अधिक कठोर। उसमें संशोधन करने की विधि न तो अत्यधिक दुष्कर बनाई गई है, और न ही अत्यन्त सरल। यह इसलिये किया गया है कि संविधान निर्माता न तो संविधान को इतना कठोर बनाना चाहते थे कि उसमें संशोधन करना ही असम्भव हो जाए, क्योंकि ऐसे में संविधान के उलटने का ही खतरा रहता है। और न ही वे संविधान को इतना लचीला बनाना चाहते थे कि उसे जब तब बिना किसी बाधा के बदला जा सके, क्योंकि ऐसे में भावावेश में कई गलत पग उठाए जाने की सम्भावना है। अतः एक मध्य मार्ग अपनाया गया।

संविधान के अधिकांश उपबंधों में संशोधन संसद के दोनों सदनों के उपस्थित सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से होता है।

संविधान में संशोधन का विधेयक संसद के किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है। वह सदन उसे कुल जनसंख्या के बहुमत, तथा उपस्थित सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से पास कर दे तो वह विधेयक दूसरे सदन के पास जाता है। दूसरा सदन भी उसे इसी विधि द्वारा स्वीकार कर ले, तो राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के पश्चात संशोधन स्वीकार हो जाता है।

हां, कुछ विषयों में, संविधान में संशोधन करने के लिये उपरोक्त विधि से संसद की स्वीकृति के अतिरिक्त बहुमत राज्यों की विधान सभाओं की स्वीकृति भी

---

1. M. C. SETALVAD—"The fundamental axioms of state policy though of no legal effect have served as a useful beacon light to courts."

2. SUPREME COURT—In the Kerala Education Bill, 1957 (1959)—"..no court should in determing the ambit of a fundamental right entirely ignore a directive principle but should try to give as much effect to both as possible by adopting the principle of harmonious construction."

Scanned with CamScanner

आवश्यक है। उदाहरण के लिये यदि संविधान की सातवीं सूची में दिये गये—केन्द्रीय, प्रान्तीय और समवर्ती सूची में दिये गये किसी विषय में संशोधन करना है तो राज्यों की विधान सभाओं की स्वीकृति भी आवश्यक होगी।

इस प्रकार संविधान के अधिकांश उपबन्धों को संशोधित करने की पद्धति विशेष कठिन नहीं है। परन्तु कुछ विषयों में, जो मुख्य रूप से राज्यों से सम्बन्धित हैं, संविधान में संशोधन करने की पद्धति, कुछ कठिन भी है।

१२. वयस्क मताधिकार

भारत का संविधान सभी नागरिकों को, जो कि वयस्क हो गए हैं, मत देने का अधिकार प्रदान करता है। यह स्मरणीय है कि १९१९ के अधिनियम और उसके पश्चात १९३५ के अधिनियम के अन्तर्गत भारत के सभी नागरिकों को मत देने का अधिकार प्राप्त नहीं था। यहां तक कि १९४५-४६ के चुनाव में भी केवल सत्रह प्रतिशत नागरिकों को मत देने का अधिकार प्रदान किया गया था।

वे सभी स्त्री-पुरुष, जिनकी आयु इक्कीस वर्ष या इससे अधिक हैं संविधान के अनुसार अब मत देने के अधिकारी हैं। यह मजेदार बात है कि संसार के सर्वाधिक प्रजातांत्रिक देश स्विटजरलैण्ड में आज भी स्त्रियों को वोट देने का अधिकार नहीं है।

पिछले कुछ महीनों से भारत में संसोपा ने और उसके बाद जनसंघ ने यह मांग बुलन्द कर दी है कि मताधिकार की आयु २१ वर्ष के स्थान पर १८ वर्ष कर दी जाए। परन्तु यह एक विवाद का विषय है और ऐसा प्रतीत होता है कि शीघ्र ही इस मांग के पूरा होने के लक्षण नहीं हैं। यह उल्लेखनीय है कि ब्रिटेन, फ्रांस और पश्चिमी-जर्मनी में मताधिकार की आयु १८ वर्ष ही है।

१३. भारत की राज भाषा हिन्दी

संविधान के अनुसार भारत की राज-भाषा हिन्दी घोषित की गई है। संविधान की धारा ३४३ में कहा गया है—"संघ की अधिकृत भाषा, देवनागिरी लिपि में हिन्दी होगी।"[1]

संविधान में कहा गया था कि सरकार, संविधान लागू होने के १५ वर्षों में इस बात की व्यवस्था करेगी कि केन्द्रीय शासन का समस्त कार्य हिन्दी में होने लगे। इन पन्द्रह वर्षों में हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेजी भी चल सकती है।

भारत की केन्द्रीय सरकार संघ की अधिकृत भाषा हिन्दी के सम्बन्ध में पूर्णतयः उदासीन ही नहीं बल्कि इसकी विरोधी रही और हिन्दी को, संविधान के अनुरूप उसका उचित स्थान दिलाने में असफल रही। परिणामस्वरूप पन्द्रह के पश्चात—अर्थात १९६५ में संविधान में संशोधन करके हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेजी को भी भारत की

---

1. ART. 343—"The official language of the Union shall be Hindi in Devnagri script."

Scanned with CamScanner

सहयोगी राज-भाषा घोषित कर दिया गया है। परन्तु सत्य यह है कि केन्द्रीय सरकार का लगभग सम्पूर्ण कार्य अंग्रेजी में ही होता है और यह तब तक होता रहेगा, जब तक भारत के सभी राज्य स्वेच्छा से हिन्दी के पक्ष में नहीं हो जाते।

शायद ही किसी देश की सरकार, अपनी राष्ट्र-भाषा के प्रति इतनी कृतघ्न रही हो जितनी कि भारत सरकार।

१४. एक ही नागरिकता

भारत का संविधान सभी नागरिकों के लिए एक ही नागरिकता का प्रावधान करता है। सभी नागरिक—भारत के नागरिक हैं। उसके साथ किसी प्रान्त या देशी रियासत के नागरिक नहीं। भारत में अमरीका अथवा स्विटजरलैण्ड जैसी दोहरी नागरिकता नहीं है।

संविधान के अनुसार वे सभी लोग जो इस संविधान के क्रियान्वयन के समय भारत में रहते थे, तथा जिनका जन्म भारत में हुआ है, अथवा जिनके माता-पिता का जन्म भारत में हुआ है, भारत के नागरिक हैं।

वे सब लोग भी जो भारत के विभाजन से पूर्व—सम्पूर्ण भारत में रहते थे और भारत के नागरिक थे, और विभाजन के पश्चात जो पाकिस्तान से विस्थापित होकर भारत में आकर स्थायी रूप से बस गए हैं—वे भी भारत के नागरिक हैं।

(१५) संकटकालीन स्थिति के लिए प्रावधान—संविधान के अठारहवें अध्याय में भारत में उत्पन्न संकटकालीन स्थितियों का मुकाबला करने के लिये विशेष प्रावधान किए गए हैं। संविधान की धारा ३५२ से ३६० तक राष्ट्रपति को विशेष शक्तियाँ प्रदान की गई हैं, जिनके माध्यम से वह संकटकाल का सामना कर सकता है।

तीन अवस्थाओं में राष्ट्रपति संकटकालीन स्थिति की घोषणा कर सकता है—(१) राज्यों की शासन व्यवस्था छिन्न-भिन्न होने पर (२) देश पर आक्रमण की अवस्था में, तथा (३) वित्तीय संकट की अवस्था में। इन तीनों अवस्थाओं में राष्ट्रपति की शक्तियों में बहुत अधिक वृद्धि हो सकती है। यहां तक कि संकटकालीन स्थिति में राष्ट्रपति नागरिकों को प्रदत्त मौलिक अधिकारों के क्रियान्वयन को भी स्थगित कर सकता है।

यद्यपि भारत में संसदीय शासन प्रणाली की व्यवस्था है, तथापि केन्द्रीय स्तर पर संकट की अवस्था में राष्ट्रपति का शासन स्थापित हो सकता है।

भारत के संविधान में संकटकालीन शक्तियों का प्रावधान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। क्योंकि राज्यों में अब तक यही संविधान को छिन्न-भिन्न होने तथा पूर्णतयः असफल होने से बचाए हुए है। और केन्द्रीय स्तर पर भी यही प्रावधान भारतीय संविधान की रक्षा करेगा। विशेष रूप से उस समय जब केन्द्रीय स्तर पर किसी भी दल का स्पष्ट बहुमत नहीं होगा तथा सरकार बनने के स्पष्ट आसार नहीं होंगे।

Scanned with CamScanner

संविधान की समीक्षा

भारतीय संविधान की विशेषताओं का अध्ययन करने के पश्चात कई विद्वानों और समीक्षकों को कुछ बातें खटकी हैं। उन्होंने संविधान की तीखी और धीमी आवाज में आलोचना भी की है। आलोचना की मुख्य बातें इस प्रकार हैं—

(१) **संविधान मौलिक नहीं है**—भारतीय संविधान की सबसे प्रमुख आलोचना इस आधार पर की जाती है कि संविधान मौलिक नहीं है। "भारतीय संविधान, अभारतीय।" (Indian Constitution is un-Indian) क्योंकि इसकी अधिकांश बातें संसार के किसी न किसी संविधान से चुराई गई हैं। विशेष रूप से ब्रिटिश और अमरीकी संविधान का इस पर बहुत अधिक प्रभाव है। यहां तक कि भारतीय संविधान में कई धाराएँ, बिना किसी परिवर्तन के ज्यों की त्यों १९३५ के अधिनियम में से उठाकर रख दी गई हैं। श्री के. एम. मुन्शी ने अपनी पुस्तक Indian Constitutional Documents—के दूसरे भाग में लिखा है—"भारत के संविधान ने १९३५ के भारतीय अधिनियम से इतना अधिक ग्रहण किया है कि यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भारत का संविधान 'संप्रभु प्रजातांत्रिक गणराज्य' की आवश्यकताओं के अनुरुप अधिनियम की पुनरावृति ही है।"[1]

यहाँ तक कि स्वयं डा० अम्बेडकर ने स्वीकार किया था कि भारत के संविधान में शायद नया कुछ भी नहीं है। पंडित नेहरू ने भी संविधान सभा में कहा था कि भारतीय संविधान ब्रिटिश संसदीय प्रणाली पर आधारित है। परन्तु अमौलिकता के सम्बन्ध में **डी. डी. बसु** बड़ी जोरदार सफाई देते हैं। उनका कहना है—If it is a patchwork, it is a beautiful patchwork." यानी यदि संविधान में कई बातें उधार भी ली गई हैं, तो बड़ी खूबसूरती से उधार ली गई हैं।

वास्तव में संविधान निर्माताओं ने दूसरे देशों के अनुभव से लाभ उठाने में कोई आपत्ति नहीं समझी।

(२) **संविधान अत्याधिक विस्तृत और लम्बा है**—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि भारत का संविधान संसार का सबसे अधिक विस्तृत और लम्बा संविधान है। यद्यपि इसकी विशालता के समर्थन में कई तरह के तर्क दिए जातें हैं और इनमें सबसे अधिक सशक्त यह माना जाता था कि संविधान निर्माता कोई सांवैधानिक उलझनों की गुन्जाईश नहीं छोड़ना चाहते थे। परन्तु क्या अब भारत में सांवैधानिक उलझनें उत्पन्न नहीं होती रहती हैं। बल्कि सत्य यह है कि संविधान की लम्बाई अधिक होने के कारण संविधानिक उलझनें भी अधिक उत्पन्न होती जा रही हैं। यानी – मर्ज बढ़ता ही गया, ज्यों-ज्यों दवा की।

---

1. K. M. MUNSHI—"The Constitution of India has drawn so heavily upon the India Act of 1935, that it will not probably be an exaggeration to say that it is an adaptation of the Act to suit the need of Sovereign Democratic Republic."

Scanned with CamScanner

सत्य यह है कि भारी भरकम संविधान बनाए बिना भी शासन की सुव्यवस्था की जा सकती थी।

३. अस्पष्ट प्रावधान

भारतीय संविधान के कई प्रावधान एकदम अस्पष्ट और कहीं-कहीं परस्पर विरोधी हैं। उदाहरणार्थ राष्ट्रपति को वास्तविक शक्तियां दी गई हैं या नहीं, राज्यपाल की सही स्थिति क्या है, संसदीय विशेषाधिकार की मर्यादाएँ और सीमाएँ कौन सी हैं, स्पीकर की शक्तियां क्या हैं—इन सबकी कोई स्पष्ट व्याख्या संविधान में नहीं हैं और इसी कारण इन सबको लेकर समय-समय पर अत्यन्त गम्भीर और कभी-कभी विस्फोटक स्थितियां उत्पन्न हुई हैं, विवाद तो हुए ही हैं।

राज्यपाल के ही विषय को लीजिए। उसकी स्थिति संविधान में एकदम अस्पष्ट है। क्या वह मुख्यमंत्री के परामर्श के अनुसार कार्य करे या केन्द्रीय गृह मंत्री के निर्देश के अनुसार, या अपने विवेक के आधार पर। संविधान इस विषय में एकदम अस्पष्ट है। इसीलिए १९६७ के आम निर्वाचन के पश्चात् राज्यपाल की वास्तविक स्थिति पर अत्यन्त उग्र वादविवाद हुए हैं। भूतपूर्व राज्यपाल **श्री श्रीप्रकाश** ने अपनी पुस्तक—State Governors in India–में स्वयं लिखा है— "राज्यपाल के अधिकार और कर्त्तव्य निश्चित रूप से लिखे जाए ताकि सब यह जान सकें कि उससे क्या अपेक्षा की जाती है और वह कैसा व्यवहार करे।"[1]

४. भारत की परिस्थितियों के अनुकूल नहीं

भारतीय संविधान बनाते समय अनेक भारतीय परिस्थितियों को अपने मस्तिष्क से ओझल कर दिया गया प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ संविधान संसदीय शासन प्रणाली की व्यवस्था करता है, जबकि भारत में संसदीय शासन प्रणाली की सबसे पहली आवश्यकता—द्वि-दल पद्धति – तो है नहीं।

इसी प्रकार—शिक्षा को राज्यों की सूची के विषय में रखा गया है। शिक्षा राज्य का विषय है। परिणाम स्वरूप सम्पूर्ण भारत में शिक्षा के क्षेत्र में एक विचित्र अराजकता फैली हुई है। देश के सम्मुख शिक्षा के सम्बन्ध, शिक्षा का न तो कोई स्पष्ट रूप व उद्देश्य हो सकता है न ही उसकी समग्र योजना बन सकती है।

इस बात की भी उपेक्षा कर दी गई है कि स्वतंत्र भारत के नव निर्माण में नागरिकों को अधिक परिश्रम और तपस्या करनी पड़ेगी और यदि वे स्वेच्छा से ऐसा नहीं करेंगे, तो सख्ती से ऐसे करने के प्रावधान संविधान में जोड़े जा सकते थे।

---

1. SRIPRAKASH—"The duties and responsibilities of Governors should be definitely prescribed so that all may know what is expected from them and how they are to conduct themselves."

Scanned with CamScanner

५. अन्य प्रावधानों की आलोचना

संविधान के कई अन्य प्रावधानों की आलोचना भी अलग-अलग विद्वानों ने की है।

साम्यवादियों को इस बात पर एतराज है कि भारत के संविधान में सम्पत्ति के स्वामित्व का अधिकार क्यों रखा गया है, यद्यपि ऐसा ही अधिकार (नाम मात्र के लिए ही सही) सोवियत रूस के संविधान में भी है। सम्पत्ति के अधिकार की आलोचना, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा राष्ट्रपति के राजाओं की मान्यता रद्द करने के आदेश को अवैध घोषित करने के बाद और तीव्र हो गई है। क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय ने प्रिवीपर्सों को राजाओं की निजी सम्पत्ति माना है और गोलकनाथ विवाद के बाद सर्वोच्च न्यायालय ने संसद की मौलिक अधिकारों को संशोधित करने की शक्ति भी छीन ली है। अतः आलोचकों के अनुसार संसद को प्रगतिवादी कदम उठाने से यदि संविधान रोकता है, तो ऐसे संविधान को ही क्यों न बदल दिया जाए।

डा० जैनिंग्स का मत है कि भारत का संविधान क्लिष्ट है। उसकी भाषा वकीलों द्वारा रची गई है। अतः उसमें स्पष्टता और सरलता के साथ पेचीदगी और दुरुहता है।

कई विद्वानों का मत है कि जब राज्य के नीति निर्देशक तत्वों की कोई मान्यता ही नहीं है, तो फिर संविधान में उसकी सूची सजाने का अर्थ ही क्या है? उनका मत है कि नीति निर्देशक तत्व सर्वथा निरर्थक और फिजूल हैं। **प्रो. के. टी. शाह** ने तो कहा है—'यह एक ऐसा चेक है, जिसका भुगतान बैंक की सुविधा पर छोड़ दिया गया है।"

कई राजनीतिज्ञों का मत है कि भारत में राज्यों को बहुत कम शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। आर्थिक रूप से भारत के राज्य केन्द्र के गुलाम ही हैं। परिणाम स्वरूप केन्द्रीय सरकार, राज्यों की सरकार के मामलों में मनमाना हस्तक्षेप कर सकती है। यह आवाज विशेष रूप से तमिलनाडु के मुख्यमंत्री ने काफी तेजी से बुलंद की थी।

इन सब आलोचनाओं के उपरान्त भी, यह सरलता से कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान भारत के 'श्रेष्ठतम' मस्तिष्कों की सन्तान है। इसके निर्माण में सदबुद्धि और विवेक के अतिरिक्त, पर्याप्त परिश्रम, अध्ययन का व्यय तो हुआ ही है। परन्तु सबसे महत्वपूर्ण बात है संविधान निर्माताओं की निष्ठा।

परन्तु किसी भी देश के संविधान के सम्बन्ध में, जैसा कि **लिविंगस्टन** ने कहा था— "उसका स्वरूप नहीं, उसका क्रियान्वयन अधिक महत्वपूर्ण है।"[1]

---

1. LIVINGSTONE—"It is the operation not the form that is important."

Scanned with CamScanner